॥ॐ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

॥श्री गणेशाय नमः॥

आध्यात्मिक सूक्त संग्रह

विषय-सूची

नासदीय सूक्त 3

हिरण्यगर्भ सूक्त 5

सौमनस्य सूक्त 8

संज्ञानसूक्त 10

ऋत सूक्त 12

श्रद्धा सूक्त 13

शिव संकल्प सूक्त 15

प्राणसूक्त 17

अभय प्राप्ति सूक्त 22

शान्त्यध्याय 25

नासदीय सूक्त

ऋग्वेद १०। १२९

ऋग्वेद के १०वें मण्डल में वर्णित १२९वें सूक्त के मन्त्र संख्या १ से ७ 'नासदीय सूक्त' के नाम से जाने जाते हैं। इस सूक्त के द्रष्टा ऋषि प्रजापति परमेष्ठी, देवता भाववृत्त तथा छन्द त्रिष्टुप् है। इस सूक्त वर्णन किया गया है कि सृष्टि का निर्माण कब, कहाँ और किससे हुआ।

नासदासीनो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भ: किमासीद्गहनं गभीरम् ॥ १॥

प्रलयकाल में न सत् था और न असत् था। उस समय न लोक था और आकाशसे दूर जो कुछ है, वह भी नहीं था। उस समय सबका आवरण क्या था? कहाँ किसका आश्रय था? अगाध और गम्भीर जल क्या था? अर्थात् यह सब अनिश्चित ही था॥ १ ॥

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न पर: किं चनास॥२॥

उस समय न मृत्यु थी, न अमृत था। सूर्य और चन्द्रमा के अभाव में रात और दिन भी नहीं थे। वायु से रहित उस दशा में एक अकेला ब्रह्म ही अपनी शक्तिके साथ अनुप्राणित हो रहा था, उससे परे या भिन्न कोई
और वस्तु नहीं थी ।। २ ।।

तम आसीत् तमसा गूळ्हमग्रे ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥ ३ ॥

सृष्टि से पूर्व प्रलयकाल में अन्धकार व्याप्त था, सब कुछ अन्धकार से आच्छादित था। अज्ञातावस्था में यह सब जल-ही-जल था और जो था वह चारों ओर होनेवाले सत्-असत्-भाव से आच्छादित था। सब अविद्यासे आच्छादित तम से एकाकार था और वह एक ब्रह्म तप के प्रभाव से हुआ। ३ ।।

कामस्तदग्रे समवर्ततााधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

सृष्टि के पहले ईश्वर के मन में सृष्टि की रचना का संकल्प हुआ, इच्छा पैदा हुई; क्योंकि पुरानी कर्म राशि का संचय जो बीजरूप में था, सृष्टिका उपादान कारणभूत हुआ। यह बीजरूपी सत्पदार्थ ब्रह्मरूपी असत से पैदा हुआ।। ४ ।।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३ दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ।। ५॥

सूर्य को किरणों के समान सृष्टि-बीज को धारण करनेवाले पुरुष भोक्ता हुए और भोग्य वस्तुएँ उत्पन्न हुईं। इन भोक्ता और भोग्य की किरणें ऊपर-नीचे, आड़ी-तिरछी फैलीं। इनमें चारों तरफ भोग्य शक्ति निकृष्ट थी और भोक्तृ शक्ति उत्कृष्ट थी ।।५।।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव ।।६।।

यह सृष्टि किस विधिसे और किस उपादानसे प्रकट हुई? यह कौन जानता है? कौन बताये ? किसकी दृष्टि वहाँ पहुँच सकती है? क्योंकि सभी इस सृष्टि के बाद ही उत्पन्न हुए हैं, इसलिये यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुई? यह कौन जानता है ? ॥ ६ ॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

इस सृष्टिका अतिशय विस्तार जिससे पैदा हुआ, वह इसे धारण किये है, रखे है या बिना किसी आधारके ही है। हे विद्वन् ! यह सब कुछ वहीं जानता है, जो परम आकाशमें रहनेवाला इस सृष्टि का नियन्ता है या शायद परमाकाश में स्थित वह भी नहीं जानता ॥ ७॥

हिरण्यगर्भ सूक्त

ऋग्वेद १०।१२१

ऋग्वेद के १०वें मण्डल के १२१ वें सूक्तको 'हिरण्यगर्भसूक्त' कहते हैं। इसके ऋषि प्रजापतिपुत्र हिरण्यगर्भ, देवता 'क' शब्दाभिधेय प्रजापति एवं छन्द त्रिष्टुप् है। हिरण्यगर्भ अर्थात् सुवर्ण गर्भ सृष्टिके आदिमें स्वयं प्रकट होनेवाला बृहदाकार-अण्डाकार तत्त्व है। यह सृष्टिका आदि अग्नितत्त्व माना गया है। मन्त्रद्रष्टा ऋषिने सृष्टिके आदिमें स्थित इसी हिरण्यगर्भके प्रति जिज्ञासा प्रकट की हैं जो सृष्टिके पहले विद्यमान था।

हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १॥

सूर्य के समान तेज जिनके भीतर है, वे परमात्मा सृष्टि की उत्पत्ति से पहले वर्तमान थे और वे ही परमात्मा इस जगत के एकमात्र स्वामी हैं। वे ही परमात्मा जो इस भूमि और द्युलोक के धारणकर्ता हैं, उन्हीं ईश्वर के लिये हम हवि का समर्पण करते हैं ॥ १।।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २॥

जिन परमात्मा के महान् सामर्थ्य से ये बर्फ से ढके पर्वत बने हैं, जिनकी शक्ति से ये विशाल समुद्र निर्मित हुए हैं और जिनके सामर्थ्य से बाहुओं के समान ये दिशाएँ-उपदिशाएँ फैली हुई हैं, उन सुखस्वरूप प्रजा के पालनकर्ता दिव्यगुणों से सबल परमात्मा के लिये हम हवि समर्पण करते हैं ।। २ ।।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३॥

जो परमात्मा अपने महान् सामर्थ्य से जगत के समस्त प्राणियों एवं चराचर जगत के एकमात्र स्वामी हुए तथा जो इन दो पैरवाले मनुष्य, पक्षी और चार पैरवाले जानवरों के

भी स्वामी हैं, उन आनन्दस्वरूप परमेश्वरके लिये हम भक्तिपूर्वक हवि अर्पित करते हैं ।। ३ ।।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४॥

जो परमात्मा आत्मशक्ति और शारीरिक बल के प्रदाता हैं, जिनकी उत्तम शिक्षाओं का देवगण पालन करते हैं, जिनके आश्रय से मोक्ष सुख प्राप्त होता है तथा जिनकी भक्ति और आश्रय न करना मृत्यु के समान है, उन देव को हम हवि अर्पित करते हैं ।।४।।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृव्ह्रा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

जिन्होंने द्युलोक को तेजस्वी तथा पृथ्वी को कठोर बनाया, जिन्होंने प्रकाश को स्थिर किया, जिन्होंने सुख और आनन्द को प्रदान किया, जो अन्तरिक्ष में लोकों का निर्माण करते हैं, उन आनन्दस्वरूप परमात्मा के लिये हम हवि अर्पित करते हैं। उनके स्थान पर अन्य किसी की पूजा करनेयोग्य नहीं है ।। ५ ।।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेता मनसा रेजभाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ६॥

बलसे स्थिर होते हुए परंतु वास्तव में चलायमान, गतिमान्, काँपनेवाले अथवा तेजस्वी, द्युलोक और पृथ्वीलोक मनन शक्ति से जिनको देखते हैं और जिनमें उदित होता हुआ सूर्य विशेष रूप से प्रकाशित होता हैं, उन आनन्दमय परमात्मा के लिये हम हवि अर्पित करते हैं ॥ ६ ॥

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ७ ॥

निश्चय ही गर्भको धारण करके अग्नि को प्रकट करता हुआ अपार जलसमूह जब संसार में प्रकट हुआ, तब उस गर्भ से देवताओं का एक प्राणरूप आत्मा प्रकट हुआ। उस जल से उत्पन्न देव के लिये हम हवि समर्पित करते हैं ॥ ७॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद् दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ८ ॥

जिन परमात्मा ने सृष्टि-जल का सृजन किया और जिनके द्वारा ही जल में सर्जन शक्ति पैदा हुई तथा सृष्टि रूपी यज्ञ उत्पन्न हुआ अर्थात् यह यज्ञमय सृष्टि उत्पन्न हुई, उन्हीं एकमात्र सर्वनियन्ता को हम हवि द्वारा अपनी अर्चना अर्पित करते हैं ॥८॥

मा नो हिंसीजनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ९ ॥

इस पृथ्वी और नभ को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर हमें दुःख न दें। जिन परमात्मा ने आह्लादकारी जल को उत्पन्न किया, उन्हीं देव को हम हवि द्वारा अपनी पूजा समर्पित करते हैं ॥ ९ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १०॥

हे प्रजा के पालनकर्ता! आप सभी प्राणियों में व्याप्त हैं। दूसरा कोई इनमें व्याप्त नहीं है। अन्य किसी से अपनी कामनाओं के लिये प्रार्थना करना उपयुक्त नहीं हैं। जिस कामना से हम आहुति प्रदान कर रहे हैं, वह पूरी हो और हम (दान-निमित्त) प्राप्त धनोंके स्वामी हो जायँ ॥ १० ॥

सौमनस्य सूक्त

संज्ञानसूक्त

ऋग्वेद १० । १९१

ऋग्वेद के १०वें मण्डल का यह १९१वाँ सूक्त ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त सौमनस्य सूक्त है जिसे संज्ञान सूक्त भी कहा जाता है। इस सूक्तके ऋषि आङ्गिरस, पहले मन्त्र के देवता अग्नि तथा शेष तीनों मन्त्रों के संज्ञान देवता हैं। पहले, दूसरे तथा चौथे मन्त्रोंका छन्द अनुष्टुप् तथा तीसरे मन्त्रको छन्द त्रिष्टुप् है। समभावक प्रेरणा देनेवाले इस सूक्त में सबकी गति, विचार और मन-बुद्धिमें सामञ्जस्यकी प्रेरणा दी गयी है।

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे से नो वसन्या भर॥ १॥

समस्त सुखों को प्रदान करने वाले हे अग्नि!आप सबमें व्यापक अन्तर्यामी ईश्वर हैं। आप यज्ञवेदी पर प्रदीप्त किये जाते हैं। हमें विविध प्रकार के ऐश्वर्यो को प्रदान करें।। १ ।।

सं गच्छध्वं सं वदध्वंसं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥२॥

हे धर्मनिरत विद्वानो ! आप परस्पर एक होकर रहें, परस्पर मिलकर प्रेम से वार्तालाप करें। समान मन होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार श्रेष्ठजन एकमत होकर ज्ञानार्जन करते हुए ईश्वरकी उपासना करते हैं, उसी प्रकार आप भी एकमत होकर-विरोध त्याग करके अपना काम करें ।। २ ।।

समानो मन्त्रःसमितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥ ३॥

हम सबकी प्रार्थना एक समान हो, भेद-भाव से रहित परस्पर मिलकर रहें, अन्तःकरण-मन-चित्त-विचार समान हों। मैं सबके हित के लिये समान मन्त्रों को अभिमन्त्रित करके हवि प्रदान करता हूँ ॥ ३॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनों यथा वः सुसहासति ॥ ४॥

तुम सबके संकल्प एकसमान हों, तुम्हारे हृदय एकसमान हों और मन एक समान हों, जिससे तुम्हारा कार्य परस्पर पूर्णरूपसे संगठित हो ॥ ४ ॥

संज्ञानसूक्त

अथर्ववेद ३।३०

अथर्ववेद के तीसरे काण्ड का 30वाँ सूक्त को भी संज्ञान सूक्त कहा जाता है। इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि अथर्वा तथा देवता चन्द्रमा हैं। यह सूक्त सामाजिक एकता सौहार्द एवं सद्भाव की भावना से परिपूर्ण है।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्या॥१॥

आप सबके मध्य में विद्वेष को हटाकर मैं सहृदयता, संमनस्कता का प्रचार करता हूँ। जिस प्रकार गौ अपने बछड़े से प्रेम करती है, उसी प्रकार आप सब एक-दूसरे से प्रेम करें ।। १ ।।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥२॥

पुत्र पिता के व्रतका पालन करनेवाला हो तथा माता का आज्ञाकारी हो। पत्नी अपने पति से शान्तियुक्त मीठी वाणी बोलनेवाली हो ॥२॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचे वदत भद्रया ।। ३ ।।

भाई-भाई आपस में द्वेष न करें। बहन बहन के साथ ईर्ष्या न रखे। आप सब एकमत और समान व्रतवाले बनकर मृदु वाणीका प्रयोग करें ।। ३॥

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ ४॥

जिस प्रेम से देवगण एक-दूसरे से पृथक् नहीं होते और न ही आपस में द्वेष करते हैं, उसी ज्ञान को तुम्हारे परिवार में स्थापित करता हूँ। सब पुरुषों में परस्पर मेल हो ॥ ४॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ॥५॥

श्रेष्ठता प्राप्त करते हुए सब लोग हृदय से एक साथ मिलकर रहो, कभी विलग न होओ। एक-दूसरे को प्रसन्न रखकर एक साथ मिलकर भारी बोझे को खींच ले चलो। परस्पर मृदु सम्भाषण करते हुए चलो और अपने अनुरक्तजनों से सदा मिले हुए रहो।। ५॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ ६॥

अन्न और जल की सामग्री समान हो। एक ही बन्धन से सबको युक्त करता हूँ। अतः उसी प्रकार साथ मिलकर अग्निकी परिचर्या करो, जिस प्रकार रथ की नाभि के चारों ओर अरे लगे रहते हैं ॥ ६॥

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥ ७॥

समान गतिवाले आप सबको सममनस्क बनाता हूँ, जिससे आप पारस्परिक प्रेम से समान-भावों के साथ एक अग्रणी का अनुसरण करें। देव जिस प्रकार समान-चित्त से अमृत की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार सायं और प्रात: आप सबकी उत्तम समिति हो। ॥७॥

ऋत सूक्त

ऋग्वेद १०।१९०

ऋग्वेद के १०वें मण्डलका १९०वाँ सूक्त 'ऋतसूक्त' है। इस सूक्त को अघमर्षण सूक्त भी कहा जाता हैं क्योंकि इस सूक्त का प्रयोग नित्य संध्या करते समय भी अघमर्षण (पापनाश)-हेतु किया जाता है। इसके ऋषि माधुच्छन्द अघमर्षण, देवता भाववृत्त तथा छन्द अनुष्ट है।

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १॥

परमात्मा को उग्र तपस्या से (सर्वप्रथम) ऋत और सत्य पैदा हुए। इसके बाद प्रलयरूपी रात्रि और जल से परिपूर्ण महासमुद्र उत्पन्न हुआ।। १ ।।

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी।। २ ॥

जल से भरे समुद्र की उत्पत्ति के बाद परमपिता ने संवत्सरका निर्माण किया; फिर निमेषोन्मेष मात्र में ही जगत को वश में करनेवाले परमपिता ने दिन और रात का निर्माण किया ।।२।।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चाऽन्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

इसके बाद सबको धारण करनेवाले परमात्माने सूर्य, चन्द्रमा, द्युलोक, पृथ्वीलोक, अन्तरिक्ष और सुखमय स्वर्ग तथा भूतल एवं आकाशका पहलेके ही समान सृजन किया। ३ ।।

श्रद्धा सूक्त

ऋग्वेद १० । १५१

ऋग्वेद के दशम मण्डलके १५१वें सूक्त को 'श्रद्धासूक्त' कहते हैं। इसकी ऋषिका श्रद्धा कामायनी, देवता श्रद्धा तथा छन्द अनुष्टुप् है। ऋषिका ने इस सूक्तमें श्रद्धा का आवाहन देवी के रूपमें करते हुए कहा है कि वे हमारे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न करें।

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥ १॥

श्रद्धा से ही अग्निहोत्र की अग्नि प्रदीप्त होती है। श्रद्धा से ही हवि की आहुति यज्ञ में दी जाती है। धन-ऐश्वर्य में सर्वोपरि श्रद्धा की हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि॥ २॥

हे श्रद्धे! दाता के लिये हितकर अभीष्ट फल को दो। हे श्रद्धे! दान देने की जो इच्छा करता है, उसका भी प्रिय करो। भोगैश्वर्य प्राप्त करने के इच्छुकों के भी प्रार्थित फल को प्रदान करो ॥ २ ॥

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि॥ ३ ॥

जिस प्रकार देवों ने असुरो को परास्त करने के लिये यह निश्चय किया कि 'इन असुरों को नष्ट करना ही चाहिये', उसी प्रकार हमारे श्रद्धालु ये जो याज्ञिक एवं भोगार्थी हैं, इनके लिये भी इच्छित भोगों को प्रदान करो।। ३ ।।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्य३ याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥४॥

बलवान् वायु से रक्षण प्राप्त करके देव और मनुष्य श्रद्धा की उपासना करते हैं, वे अन्त:करण में संकल्प से ही श्रद्धा की उपासना करते हैं। श्रद्धा से धन प्राप्त होता है ।।४।।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निमुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥५॥

हम प्रात:काल में श्रद्धा की प्रार्थना करते हैं। मध्याह्न में श्रद्धाकी उपासना करते हैं। सूर्यास्त के समय में भी श्रद्धा की उपासना करते हैं। हे श्रद्धादेवि ! इस संसार में हमें श्रद्धावान् बनाइये ।। ५ ।।

शिव संकल्प सूक्त

(कल्याणसूक्त)

शुक्लयजुर्वेद अध्याय ३४

शुक्लयजुर्वेदके ३४वें अध्याय में पठित शिव संकल्प सूक्त अथवा कल्याण सूक्त कहलाता है। इस सूक्त में मन के शुभ संकल्प युक्त होने की प्रार्थना मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने इस सूक्तमें व्यक्त की हैं।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१॥

जिस प्रकार जागते हुए पुरुष का मन दूर चला जाता है और सोते हुए पुरुष का वैसे ही निकट आ जाता है, जो परमात्मा के साक्षात्कार का प्रधान साधन है; जो भूत, भविष्य, वर्तमान, संनिकृष्ट एवं व्यवहित पदार्थों का एकमात्र ज्ञाता है तथा जो विषयों का ज्ञान प्राप्त करनेवाले श्रोत्र आदि इन्द्रियों का एकमात्र प्रकाशक और प्रवर्तक है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्प से युक्त हो ॥ १ ॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। २ ।।

कर्मनिष्ठ एवं धीर विद्वान् जिसके द्वारा यज्ञिय पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके यज्ञ में कर्मों का विस्तार करते हैं, जो इन्द्रियों का पूर्वज अथवा आत्मस्वरूप है, जो पूज्य है और समस्त प्रजा के हृदय में निवास करता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्प से युक्त हो ॥२॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। ३।।

जो विशेष प्रकार के ज्ञान का कारण है, जो सामान्य ज्ञान का कारण है, जो धैर्यरूप है, जो समस्त प्रजा के हृदय में रहकर उनकी समस्त इन्द्रियों को प्रकाशित करता है, जो स्थूल शरीर को मृत्यु होने पर भी अमर रहता है और जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्प से युक्त हो ।। ३॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। ४॥

जिस अमृत स्वरूप मन के द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्य सम्बन्धी सभी वस्तुएँ ग्रहण की जाती हैं तथा जिसके द्वारा सात होता वाला अग्निष्टोम यज्ञ सम्पन्न होता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्प से युक्त हो । ४ ।।

यस्मिन्नृचः साम यजूषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तछ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥५॥

जिस मन में रथचक्र की नाभि में अरों के समान ऋग्वेद और सामवेद प्रतिष्ठित हैं तथा जिसमें यजुर्वेद प्रतिष्ठित है, जिसमें प्रजा का सब पदार्थों से सम्बन्ध रखने वाला सम्पूर्ण ज्ञान ओतप्रोत है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्प से युक्त हो।। ५ ।।।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यानेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। ६ ।।

श्रेष्ठ सारथि जैसे घोड़ों का संचालन और रास के द्वारा घोड़ों का नियन्त्रण करता है, वैसे ही जो प्राणियों का संचालन तथा नियन्त्रण करनेवाला है, जो हृदय में रहता हैं, जो कभी बूढ़ा नहीं होता और जो अत्यन्त वेगवान् हैं, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत सम्बन्धी संकल्प से युक्त हो ॥ ६ ॥

प्राणसूक्त

अथर्ववेद ११।४

अथर्ववेद के ११ वें काण्ड का चौथा सूक्त प्राण सूक्त के नाम से विख्यात है। इसमें प्राणों को परमात्मा के रूप में निरूपित कर उनकी स्तुति की गयी है।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १॥

जिसके आधीन यह सब जगत् है, उस प्राण के लिये मेरा नमस्कार है। वह प्राण सबका ईश्वर है और उसमें सब जगत् रह रहा है॥ १॥

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥ २॥

हे प्राण ! गर्जना करने वाले तुझको नमस्कार है, मेघों में नाद करने वाले तुझको नमस्कार है। हे प्राण ! चमकने वाले तुझको नमस्कार है और हे। प्राण! वृष्टि करने वाले तुझको नमस्कार है ।। २ ।।

यत् प्राण स्तनयिनुनाभिक्रन्दत्योषधीः।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥३॥

हे प्राण ! जब तू मेघों के द्वारा औषधियों के सम्मुख बड़ी गर्जना करता है, तब औषधियाँ तेजस्वी होती हैं, गर्भधारण करती हैं और बहुत प्रकार से विस्तार को प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि॥ ४॥

हे प्राण ! वर्षा ऋतु आते ही जब तू औषधियों के उद्देश्य से गर्जन करने लगता है, तब सब जगत् तथा जो कुछ इस पृथ्वी पर है, आनन्दित होता है ।। ४ ।।

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥ ५ ॥

जब प्राण वृष्टिद्वारा इस बड़ी भूमि पर वर्षा करता है, तब पशु हर्षित होते हैं और समझते हैं कि निश्चय ही अब हम सबकी वृद्धि होगी ।। ५ ।।

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्।
आयुर्वे नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः॥ ६॥

औषधियों पर वृष्टि होने के पश्चात् औषधियाँ प्राण के साथ भाषण करती हैं कि हे प्राण! तूने हमारी आयु बढ़ा दी है और हम सबको सुगन्धियुत किया है ॥ ६॥

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७॥

आगमन करनेवाले प्राण के लिये नमस्कार है, गमन करने वाले प्राण के लिये नमस्कार है। हे प्राण ! स्थिर रहनेवाले और बैठनेवाले प्राण के लिये नमस्कार हैं ।। ७ ।।

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥ ८॥

हे प्राण! जीवन का कार्य करने वाले तुझ को नमस्कार है, अपान का कार्य करनेवाले तुझ को नमस्कार है। आगे बढ़नेवाले और पीछे हटने वाले प्राण के लिये नमस्कार है, सब कार्य करनेवाले तुझ को यह मेरा नमस्कार है ॥ ८ ॥

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥

हे प्राण ! जो मेरा प्रिय शरीर है, और जो तेरे प्रिय भाग हैं तथा जो तेरा औषधि है, वह दीर्घजीवन के लिये हमको दे॥ ९ ॥

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।

प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च ने॥१०॥

जिस प्रकार प्रिय पुत्र के साथ पिता रहता है, उस प्रकार सब प्रजाओं के साथ प्राण रहता है, जो प्राण धारण करते हैं और जो नहीं धारण करते, उन सबका प्राण ही ईश्वर है॥१०॥

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो है सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११॥

प्राण ही मृत्यु है और प्राण ही जीवनकी शक्ति है। इसलिये सब देव प्राण की उपासना करते हैं; क्योंकि सत्यवादी को प्राण ही उत्तम लोक में पहुँचाता है॥ ११ ॥

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥१२॥

प्राण विशेष तेजस्वी है और प्राण ही सबका प्रेरक हैं, इसलिये प्राण की ही सब उपासना करते हैं। सूर्य, चन्द्रमा और प्रजापति भी प्राण ही हैं॥१२॥

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥

प्राण और अपान ही चावल और जौ हैं। बैल ही मुख्य प्राण है। जौ में प्राण रखा है और चावल अपान को कहते हैं । ॥१३॥

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भ अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ से जायते पुनः ॥ १४॥

जीव गर्भ के अन्दर प्राण और अपान के व्यापार करता है। हे प्राण ! जब तू प्रेरणा करता है, तब वह जीव पुनः उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

प्राण को मातरिश्वा कहते हैं, और वायु का नाम ही प्राण है। भूत, भविष्य और सब कुछ वर्तमान काल में जो हैं, वह सब प्राण में ही रहता ॥ १५ ॥

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि॥ १६॥

हे प्राण ! जब तक तू प्रेरणा करता है, तबतक ही आथर्वणी, आंगिरसी, दैवी और मनुष्यकृत औषधियाँ फल देती हैं ॥ १६ ॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥ १७॥

जब प्राण इस बड़ी पृथ्वी पर वृष्टि करता है, सब औषधियाँ और वनस्पतियाँ बढ़ जाती हैं॥ १७ ॥

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥

हे प्राण ! जो मनुष्य तेरी इस शक्ति को जानता है और जिस मनुष्य में तू प्रतिष्ठित होता है, उस मनुष्य के लिये उस उत्तम लोक में सब ही सत्कार को समर्पण करते हैं ॥ १८ ॥

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः॥ १९॥

हे प्राण ! जिस प्रकार ये सब प्रजाजन तेरा सत्कार करते हैं कि जो उत्तम यशस्वी है और तेरा सामर्थ्य सुनता है, उसके लिये भी बलि देते हैं ॥ १९॥

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्रविवेशा शचीभिः॥ २०॥

इन्द्रियादि में जो व्यापक प्राण है, वह ही गर्भ के अन्दर चलता है। जो पहले हुआ था, वह ही फिर उत्पन्न होता है। जो पहले हुआ था, वह ही अब होता है और आगे भी होगा। पिता अपनी सब शक्तियों के साथ पुत्र में प्रविष्ट होता है॥ २० ॥

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्।

यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदाचन ॥२१॥

जल से हंस ऊपर उठता हुआ एक पैर को नहीं उठाता। हे प्रिय ! यदि वह उस पैर को उठायेगा। तो आज, कल, रात्रि, दिन, प्रकाश और अँधेरा कुछ भी नहीं होगा ॥२१॥

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्याधं कतमः स केतुः ॥ २२॥

आठ चक्रों से युक्त, अक्षरों से व्यक्त जिसका है, ऐसा यह प्राणचक्र आगे और पीछे चलता है। आधे भाग से सब भुवनों को उत्पन्न करके जो इसका आधा भाग शेष रहा है, वह किसका चिह्न है? ॥ २२ ॥

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥

हे प्राण! सबको जन्म देनेवाले और इस सब हलचल करने वाले जगत का जो ईश है, सब अन्यों में शीघ्र गतिवाले तेरे लिये नमन हैं ॥ २३ ॥

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४॥

जन्म धारण करनेवाले और हलचल करने वाले सबका जो स्वामी हैं, वह धैर्यमय प्राण आलस्यरहित होकर आत्मशक्ति से युक्त होता हुआ प्राण मेरे पास सदा रहे ॥२४॥

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥

सबके सो जानेपर भी यह प्राण खड़ा रहकर जागता है, कभी तिरछा गिरता नहीं। सबके सो जानेपर इसका सोना किसी ने भी सुना नहीं हैं ।। २५ ॥

प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥२६॥

हे प्राण ! मेरे से पृथक् न होओ। मेरे से दूर न होओ। पानी के गर्भ के समान हे प्राण ! जीवनके लिये अपने अन्दर तुझको बाँधता हूँ॥ २६ ॥

अभय प्राप्ति सूक्त

अथर्ववेद, पैप्पलादशाखा २ । १५

अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के इस १५वें सूक्त में वर्णित तेरह मन्त्र अभय प्राप्ति सूक्त कहलाते हैं। इस सूक्तके ऋषि ब्रह्मा हैं, देवता प्राण-अपान आदि हैं और छन्द त्रिवृद्गायत्री है।

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा में प्राण मा रिषः ॥१॥

जिस प्रकार द्यौ और पृथिवी न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥१॥

यथा वायुश्चान्तरिक्षं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥ २॥

जिस प्रकार वायु और अन्तरिक्ष न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥२॥

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा में प्राण मा रिषः ॥ ३॥

जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥३॥

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ।।४॥

जिस प्रकार दिन और रात्रि न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥ ४ ॥

यथा धेनुश्चानवांश्च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा में प्राण मा रिषः ।।५।।

जिस प्रकार धेनु और वृषभ न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥५॥

यथा मित्रश्च वरुणश्च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा में प्राण मा रिषः ॥ ६ ॥

जिस प्रकार मित्र और वरुण ने डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥६॥

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा में प्राण मा रिषः ॥ ७॥

जिस प्रकार ब्रह्म और क्षेत्र न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥७॥

यथेन्द्रश्चेन्द्रियं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा में प्राण मा रिषः ॥ ८॥

जिस प्रकार इन्द्र और इन्द्रियाँ न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥८॥

यथा वीरश्च वीर्यं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा में प्राण मा रिषः ॥ ९॥

जिस प्रकार वीर और वीर्य न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥९॥

यथा प्राणश्चापानश्च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा में प्राण मा रिषः ॥ १०॥

जिस प्रकार प्राण और अपान न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥१०॥

यथा मृत्युश्चामृतं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा में प्राण मा रिषः॥११॥

जिस प्रकार मृत्यु और अमृत न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।। ११ ।।

यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा में प्राण मा रिषः ॥ १२।।

जिस प्रकार सत्य और अनृत न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥१२॥

यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा में प्राण मा बिभेः एवा में प्राण मा रिषः ॥१३॥

जिस प्रकार भूत और भव्य न डरते हैं और न क्षीण होते हैं, हे मेरे प्राण! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥१३॥

शान्त्यध्याय

शुक्लयजुर्वेद ३६

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये।
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ॥ १॥

मैं ऋक्-रूप वाणी की, यजुः-रूप मन की, प्राणरूप साम की और चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रिय की शरण लेता हूँ। जिससे वाणी-बल, शारीरिक बल एवं प्राण तथा अपान मुझमें स्थिर रूप से स्थित रहें ॥ १॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २॥

एवं प्रग तथा अपने में । मेरे चक्षु की, हृदय की तथा मन की जो दुर्बलता है, उसको देवगुरु बृहस्पति दूर करें। जो परमात्मा समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी है, वह मेरे लिये सुख़स्वरूप हो ॥२॥

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३॥

आदित्य मण्डल स्थित सर्वान्तर्यामी परब्रह्म स्वरूप सवितृ देव के उस वरण योग्य स्वरूप का हम ध्यान करते हैं, जो सवितृदेव हमारी बुद्धि को सत्कर्म की और प्रेरित करते हैं ॥ ३॥

कया नश्चित्रऽ आ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥४॥

सर्वदा वर्द्धनशील एवं आश्चर्यस्वरूप हे इन्द्र! तुम किस तर्पण, किस प्रीति अथवा किस यज्ञकर्म से हमारे सहायक हो सकते हो ? ॥ ४॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मछहिष्ठो मत्सदन्धसः।
चिदाजे वसु ॥५॥

हे परमेश्वर ! सोमरूप अन्नका वह कौन-सा भाग हैं, जो हवियों में श्रेष्ठ और जो आपको विशेष सन्तुष्ट करता है। आपकी जिस प्रसन्नता में जो भक्त दृढ़ता से रहते हैं, उन्हें आप धन विभाग करके प्रदान करते हैं ।।५।।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।
शतं भवास्यूतिभिः ॥६॥

हैं इन्द्र! जो तुम्हारी मित्र रूप में स्तुति करते हैं, तुम उन भक्तों की रक्षा के लिये अनन्त रूप धारण करते हो ॥६॥

कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥

हे इन्द्र! तुम किस स्तुतिरूप हविर्दानसे तृप्त होकर हमें आनन्दित करते हो तथा किस स्तुतिकर्ता यजमानको धन देते हो ? ॥७॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ८ ॥

जो परमेश्वर समस्त संसार के स्वामी हैं अथवा जो सूर्य समस्त संसार के प्रकाशक हैं, वह सूर्य हमारे द्विपद अर्थात् पुत्रादि के लिये तथा चतुष्पद अर्थात् गौ आदि पशुओं के लिये कल्याणकारी हों ॥८॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥९॥

मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति और विष्णु ये सभी देवगण हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥९॥

शं नो वातः पवताछ शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥ १०॥

हमारे लिये वायु, सूर्य और वरुण कल्याणकारी हों अर्थात् वायु सुखस्वरूप बहे, सूर्य सुखप्रद किरणों का प्रसार करें और वरुण सुवृष्टि प्रदान करें। ॥१०॥

अहानि शं भवन्तु नः शश्च रात्रीः प्रति धीयताम् ।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ॥११॥

हमारे लिये दिन और रात्रि सुखस्वरूप हों तथा इन्द्राग्नी, इन्द्रवरुण, इन्द्रपूषा और इन्द्रसोम ये सभी देवता हमारे लिये कल्याणकारी हों एवं हमारे रोग तथा भयको दूरकर सुखकारी हों ॥११॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
योरभि स्रवन्तु नः ॥१२॥

प्रकाशमान जल हमारे अभिषेक अथवा अभीष्ट सिद्धि के लिये सुखकर हो तथा हमारे रोग और भयका नाशक हो ॥१२॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥१३॥

हे पृथिवि ! तुम कण्टकहीन अर्थात् अकण्टकरूप पृथिवीमें निवासस्थान देकर हमें अपनी शरणमें लो। ॥१३॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे गाय चक्षसे ॥१४॥

हे जलसमूह! तुम सुख के देने वाले रस स्थापक हो और तुम अत्यन्त रमणीय एवं दर्शनीय हो। ॥१४॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥ १५ ॥

हे जलसमूह! तुम्हारा जो सुखकारी शान्तमय रस है, उस रस का हमें भी भागी बनाओ। जिस प्रकार प्रेम से माता अपने बालकों को स्तन द्वारा दुग्धपान कराती हैं, उसी प्रकार हमें भी जल प्रदानकर अमृत रूपी मधुर रस का पान कराओ ॥१५॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा नः ॥१६॥

हे जलसमूह ! तुम सर्वदा समस्त लोकों में गमनशील हो; क्योंकि तुम्हारे ही निवाससे आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् जीवित है। अत: हमें भी अपने मधुर जलद्वारा प्रजोत्पादनके समर्थ करो ॥१६॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षॐ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥१७॥

द्युलोक-स्वर्गलोक रूपा शान्ति, अन्तरिक्ष-आकाश रूपा शान्ति, पृथिवी रूपा शान्ति, जल रूपा शान्ति, औषधरूपा शान्ति, वनस्पतिरूपा शान्ति, विश्वदेवरूपा शान्ति, ब्रह्म वेद रूपा शान्ति, समस्त संसाररूपा शान्ति और जो स्वभावतः शान्ति है, वह शान्ति हमें प्राप्त हो ॥ १७ ॥

दृते दृछह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८॥

हे परमेश्वर! तुम हमारी वृद्धावस्था के कारण निर्बल शरीर होने पर हमें बलवान् बनाओ। समस्त प्राणी हमको मित्र की दृष्टि से देखें और हम भी उन्हें मित्र की दृष्टि से देखें। परस्पर में मैत्रीभाव होने से हमलोग सबको मित्र की दृष्टि से देखेंगे ॥ १८ ॥

दृह मा। ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशिजीव्यासम् ॥ १९॥

हे भगवन्! हमें दृढ़ करो। हम तुम्हारे दर्शन से दीर्घजीवी होंगे, हम तुम्हारे दर्शन से दीर्घजीवी होंगे ॥ १९॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्वर्चिषे।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्य शिवो भव ॥ २०॥

हे अग्ने ! तुम्हारे तेज को नमस्कार है। समस्त रसों के संशोधन करनेवाले तुम्हारे तेज को नमस्कार है। समस्त पदार्थों में प्रकाश करने वाले तुम्हारे तेज को नमस्कार है।

तुम्हारी ज्वाला हमारे विरोधियों के लिये क्लेश देनेवाली हो और हमारे लिये शान्त अर्थात् कल्याण देनेवाली हो ॥ २० ॥

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयिनवे।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे॥ २१॥

हे भगवन् ! विद्युत्-स्वरूप तुमको नमस्कार है। स्तनयिलु स्वरूप अर्थात् मेघस्वरूप तुमको नमस्कार है। जिस कारण तुम स्वर्ग जानेकी चेष्टा करते हो, तदर्थ तुमको नमस्कार है ॥२१ ॥

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ २२॥

हे परमेश्वर ! तुम जिन दुश्चरित्रों को हमसे हटाकर सर्वदा उपकार की चेष्टा करते हो, उनसे हमें भयमुक्त करो। तुम हमारी सन्तानों को सुख दो और हमारे पशुओं को भी भयमुक्त करो ॥२२॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३॥

हे परमेश्वर ! जल और औषधियाँ हमारे लिये अच्छे मित्रकी तरह अबस्थित हों। जो हमसे द्वेष करते हैं अथवा हम जिनसे शत्रुता करते हैं, ऐसे हम दोनों (उभयपक्ष)-के लिये जल और औषधियाँ सुखरूपेण अवस्थित हों ॥२३॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत& शृणुयाम शरदः
शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥२४॥

देवताओंके हितकारी अथवा प्रिय परमेश्वर का जो चक्षुभूत सूर्य का तेज पूर्वदिशा में उदित होता है, वह हमें जीवनपर्यन्त अव्याहत चक्षु सम्पन्न रखें, जिससे हम उन्हें भलीभाँति देख सकें। हम सौ वर्ष पर्यन्त जीयें, सौ वर्ष पर्यन्त सुनें और सौ वर्ष पर्यन्त बोलें । हम सौ वर्ष पर्यन्त दैन्य होकर न रहे अर्थात् हमें कभी किसी से कुछ माँगना न पड़े। हम सौं वर्षसे भी अधिक जीवित रहें ॥ २४॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय:।।